विषय-परिचय

बन्धनके चार भेद हैं- बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बन्धविधान। यहाँ इस अनुयोगद्वारमें, बन्धक और बन्धविधानकी सूचनामात्र की है, क्योंकि बन्धकका विशेष विचार खुद्दाबन्धमें और बन्धविधानका विशेष विचार महाबन्धमें किया है। शेष दो प्रकरण अर्थात् बन्ध और बन्धनीयका विचार इस अनुयोगद्वारमें किया है। इस अनुयोगद्वारमें बन्धनीयके प्रसंगसे वर्गणाओंका विशेषरूपसे ऊहापोह किया गया है, इसलिए ही स्पर्शसे लेकर यहां तकके पूरे प्रकरणकी वर्गणाखंड संज्ञा पडी है। अब संक्षेपसे इस भागमें वर्णित विषयका ऊहापोह करते हैं।

१ बन्ध

बन्धके चार भेद हैं- नामबन्ध, स्थापनाबन्ध, द्रव्यबन्ध और भावबन्ध। इनमेंसे नैगम, संग्रह और व्यवहारनय सब बन्धोंको स्वीकार करते हैं। ऋजुसूत्रनय स्थापनाबन्धको स्वीकार नहीं करता है, शेष को स्वीकार करता है। शब्दनय केवल नामबन्ध और भावबन्धको स्वीकार करता है। कारण स्पष्ट है।

एक जीव एक अजीव नाना जीव और नाना अजीव आदि जिस किसीका बन्ध ऐसा नाम रखना नामबन्ध है। तदाकार और अतदाकार पदार्थोंमें यह बन्ध है ऐसी स्थापना करना स्थापनाबन्ध है। द्रव्यबन्धके दो भेद हैं- आगमद्रव्यबन्ध और नोआगमद्रव्यबन्ध। भावबन्धके भी ये ही दो भेद हैं। बन्धविषयक स्थित आदि नौ प्रकारके आगममें वाचना आदि रूप जो उपयुक्त भाव होता है उसे आगम भावबन्ध कहते हैं। नोआगमभावबन्ध दो प्रकारका है- जीवभावबन्ध और अजीवभावबन्ध। जीवभावबन्धके तीन भेद हैं- विपाकज जीवभावबन्ध, अविपाकज जीवभावबन्ध और तदुभयरूप जीवभावबन्ध। जीवविपाकी अपने अपने कर्मके उदयसे जो देवभाव, मनुष्यभाव, तिर्यञ्चभाव, नरकभाव, स्त्रीवेद, पुरुषवेद आदि रूप औदयिक भाव होते हैं वे सब विपाकज जीवभावबन्ध कहलाते हैं। अविपाकज जीवभावबन्धके दो भेद हैं- औपशमिक और क्षायिक। उपशान्त क्रोध, उपशान्त मान आदि औपशमिक अविपाकज जीवभावबन्ध कहलाते हैं और क्षीणमोह, क्षीणमान आदि क्षायिक अविपाकज जीवभावबन्ध कहलाते हैं। यद्यपि अन्यत्र जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन पारिणामिक मानकर इन्हें अविपाकज जीवभावबन्ध कहा है पर ये तीनों भाव भी कर्मके निमित्तसे होते हैं, इसलिए यहाँ इन्हें अविपाकज जीवभावबन्धमें नहीं गिना है। तथा एकेन्द्रियलब्धि आदि क्षायोपशमिकभाव तदुभयरूप जीवभावबन्ध कहे जाते हैं। अजीवभावबंध भी विपाकज, अविपाकज और तदुभयके भेदसे तीन प्रकारका है। पुद्गलविपाकी कर्मोंके उदयसे शरीरमें जो वर्णादि उत्पन्न होते हैं वे विपाकज अजीवभावबंध कहलाते हैं। तथा पुद्गलके विविध स्कन्धोंमें जो स्वाभाविक वर्णादि होते हैं वे अविपाकज अजीवभावबंध कहलाते हैं और दोनों मिले हुए वर्णादिक तदुभयरूप अजीवभावबंध कहलाते हैं

यह हम पहले ही संकेत कर आये हैं कि द्रव्यबंध दो प्रकारका है-- आगमद्रव्यबंध और नोआगमद्रव्यबंध। बंधविषयक नौ प्रकारके आगममें वाचना आदिरूप जो अनुपयुक्त भाव होता है उसे आगमद्रव्यबंध कहते हैं। नोआगम द्रव्यबंध दो प्रकारका है- प्रयोगबंध और विस्रसाबंध। विस्रसाबंधके दो भेद हैं-- सादिविस्रसाबंध और अनादिविस्रसाबंध। अलग अलग धर्मास्तिकायका अपने देशों और प्रदेशोंके साथ अधर्मास्तिकायका अपने

देशों औरप्रदेशोंके साथ और आकाशस्तिकायका अपने देशों और प्रदेशोंके साथ अनादिकालीन जो बंध है वह अनादि विस्रसाबंध कहलाता है तथा जो स्निग्ध और रूक्षगुणयुक्त पुद्गलोंका जो बन्ध होता है वह सादि विस्रसाबन्ध कहलाता है। सादिविस्रसाबन्धके लिए मूल ग्रन्थका विशेषरूपसे अवलोकन करना आवश्यक है। नाना प्रकारके स्कन्ध इसी सादि विस्रसाबन्धके कारण बनते हैं। प्रयोगबन्ध दो प्रकारका है- कर्मबन्ध और नोकर्मबन्ध। नोकर्मबन्धके पांच भेद हैं- आलापनबन्ध, अल्लीवणबन्ध, संश्लेषबन्ध, शरीरबन्ध और शरीरिबन्ध। काष्ठ आदि पृथग्भूत द्रव्योंको रस्सी आदिसे बांधना आलापनबन्ध है। लेपविशेषके कारण विविध द्रव्योंके परस्पर बंधनेको अल्लीवणबन्ध कहते हैं लाख आदिके कारण दो पदार्थोंका परस्पर बंधना संश्लेषबन्ध कहलाता है। पांच शरीरोंका यथायोग्य सम्बन्धको प्राप्त होना शरीरबन्ध कहलाता है। इस कारण पांच शरीरोंके द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी पन्द्रह भेद हो जाते हैं। नामोंका निर्देश मूल में किया ही है। शरीरबन्धके दो भेद हैं- सादि शरीरबंध और अनादिशरीरबन्ध। जीवका औदारिक आदि शरीरोंके साथ होनेवाले बन्धको सादिशरीरबन्ध कहते हैं। यद्यपि तैजस और कार्मणशरीरका जीवके साथ अनादिबन्ध है पर यहां अनादि सन्तानबन्धकी विवक्षा न होनेसे वह सादिशरीरबन्धमें ही गर्भित कर लिया गया है। कर्मबन्धका विशेष विचार कर्मप्रकृति अनुयोगद्वारमें पहले ही कर आये हैं।

२ बन्धक

बन्धकका विशेष विचार खुद्दाबन्धमे ग्यारह अनुयोगद्वारोंका आलम्बन लेकर पहले कर आये हैं, इसलिए यहाँ इस विषयकी सूचनामात्र दी गई है।

३ बन्धनीय

जीवसे पृथग्भूत जो कर्म और नोकर्म स्कन्ध हैं उनकी बन्धनीय संज्ञा है। वे पुद्गल द्रव्य, क्षेत्र काल और भावके अनुसार वेदनयोग्य होते हैं। ऐसा होते हुए भी वे स्कन्ध पर्यायसे परिणत होकर ही वेदनयोग्य होते हैं ऐसा नियम है। उसमें भी सभी पुद्गलस्कन्ध वेदनयोग्य नहीं होते किन्तु तेईस प्रकारकी वर्गणाओंमें जो ग्रहणप्रायोग्य वर्गणायें हैं उनके कर्म और नोकर्मरूप परिणत होनेपर ही वे वेदनयोग्य होते हैं अतः यहाँ वर्गणाओंका अनुगम करते हुए उनका इन आठ अनुयोगद्वारोंका अवलम्बन लेकर विचार किया गया है। वे आठ अनुयोगद्वार ये हैं- वर्गणा, वर्गणाद्रव्यसमुदाहार, अनन्तरोपनिधा, परम्परोपनिधा, अवहार, यवमध्य पदमीमांसा और अल्पबहुत्व।

वर्गणा- वर्गणाके दो भेद हैं- आभ्यन्तर वर्गणा और बाह्य वर्गणा। आभ्यन्तरवर्गणा दो प्रकारकी है- एकश्रेणिवर्गणा और नानाश्रेणिवर्गणा। उनमेंसे एकश्रेणिवर्गणाका सर्व प्रथम सोलह अनुयोगद्वारोंका आलम्बन लेकर विचार किया गया है। वे सोलह अनुयोगद्वार ये हैं- वर्गणानिक्षेप वर्गणानयविभाषणता, वर्गणाप्ररूपणा, वर्गणानिरूपणा, वर्गणाध्रुवाध्रुवानुगम, वर्गणासान्तरनिरन्तरानुगम, वर्गणाओजयुग्मानुगम, वर्गणाक्षेत्रानुगम, वर्गणास्पर्शनानुगम, वर्गणाकालानुगम, वर्गणाअन्तरानुगम, वर्गणाभावानुगम, वर्गणाउपनयनानुगम, वर्गणापरिमाणानुगम वर्गणाभागाभागानुगम और वर्गणाअल्पबहुत्वानुगम।

यहां वर्गणानिक्षेपके छह भेद करके उनमेंसे कौन निक्षेप किस नयका विषय है यह बतलाकर इस प्रकरणको समाप्त किया गया है। वर्गणाके सोलह अनुयोगद्वारोंमेंसे केवल दो का ही विचार कर वर्गणाद्रव्यसमुदाहारका अवतार क्यों किया गया है यह प्रश्न उठाकर वीर-सेनस्वामीने उसका यह समाधान किया है कि वर्गणा प्ररूपणा अधिकार केवल वर्गणाओंकी एक श्रेणिका कथन करता है किन्तु वर्गणाद्रव्यसमुदाहार वर्गणाओंकी एकश्रेणि और नाना-श्रेणिका सांगोपांग विचार करता है अतः यहां वर्गणाके शेष चौदह अधिकारोंका कथन न करके वर्गणाद्रव्यसमुदाहारका कथन प्रारम्भ किया है।

वर्गणाद्रव्यसमुदाहार– इस अनुयोगद्वारके भी चौदह अवान्तर अधिकार हैं जिनके नाम ये हैं– वर्गणाप्ररूपणा, वर्गणानिरूपणा, वर्गणाध्रुवाध्रुवानुगम, वर्गणासान्तरनिरन्तरानुगम वर्गणाओजयुग्मानुगम, वर्गणक्षेत्रानुगम, वर्गणास्पर्शनानुगम, वर्गणाकालानुगम, वर्गणाअन्तरानु-गम, वर्गणाभावानुगम, वर्गणाउपनयनानुगम, वर्गणापरिमाणानुगम, वर्गणाभागाभागानुगम और वर्गणा अल्पबहुत्व।

वर्गणाप्ररूपणा– इसके द्वारा तेईस प्रकारकी वर्गणाओंका विचार किया है। वे तेईस प्रकारकी वर्गणायें ये है-एकप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्य वर्गणा, संख्यातप्रदेशिक परमाणुपुद्गल-द्रव्य वर्गणा, असंख्यात प्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा, अनन्तप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा, आहारवर्गणा, अग्रहणवर्गणा, तैजसशरीरद्रव्यवर्गणा, अग्रहणवर्गणा, भाषाद्रव्यवर्गणा, अग्रहण-वर्गणा, मनोद्रव्यवर्गणा, अग्रहणवर्गणा, कार्मणद्रव्यवर्गणा, ध्रुवस्कन्धवर्गणा, सान्तरनिरन्तर-वर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, प्रत्येकशरीरद्रव्यवर्गणा, ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा, बादरनिगोदद्रव्यवर्गणा, ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा और महास्कन्धवर्गणा।

एक परमाणुकी एकप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा संज्ञा है। द्विप्रदेशिकसे लेकर उत्कृष्ट संख्यातप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा तककी सब वर्गणाओंकी संख्यातप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा संज्ञा है। जघन्य असंख्यातप्रदेशिकसे लेकर उत्कृष्ट असंख्यातप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणाओंकी असंख्यातप्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा संज्ञा है। आहारवर्ग-णासे पूर्वतककी अनन्तप्रदेशी और अनन्तानन्तप्रदेशी जितनी वर्गणायें हैं उनकी यहां अनन्त-प्रदेशिक परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा संज्ञा दी है। इन्हीं वर्गणाओंमें परीत और अपरीतप्रदेशी परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणायें भी सम्मिलित हैं। औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारक-शरीरके योग्य वर्गणाओंकी आहारवर्गणा संज्ञा है। इसी प्रकार आगे भी अपने अपने कार्यके अनुसार उन उन वर्गणाओंकी संज्ञा जाननी चाहिए। यहां जो चार ध्रुवशून्यवर्गणायें कहीं हैं वे वस्तुतः शून्यरूप हैं। केवल पिछली वर्गणा और अगली वर्गणाके मध्यके शून्यरूप अन्तरालका परिज्ञान करानेके लिए यह संज्ञा दी गई है।

यहाँ अन्तमें आई हुई प्रत्येकशरीरवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा और महास्कन्धवर्गणा ये चार ऐसी वर्गणायें हैं जिनके स्वरूपके विषयमें कुछ अलगसे प्रकाश डालना आवश्यक है, अतः यहाँ इस विषयमें लिखा जाता है। एक जीवके एक शरीरमें जो कर्म और नोकर्मस्कन्ध संचित होता है उसकी प्रत्येकशरीरद्रव्यवर्गणा संज्ञा है यह प्रत्येकशरीर पृथि-वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, देव, नारकी, आहारकशरीरी प्रमत्तसंयत और

केवली जिनके पाया जाता है। इन आठ प्रकारके जीवोंको छोडकर शेष जितने संसारी जीव हैं उनका शरीर या तो निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित होनेके कारण सप्रतिष्ठित प्रत्येकरूप है या स्वयं निगोदरूप है। मात्र जो प्रत्येक वनस्पति निगोदरहित होती है वह इसका अपवाद है। यहां यह प्रश्न उठता है कि जब मनुष्योंके शरीर अन्य अवस्थाओं में निगोदोंसे प्रतिष्ठित होते हैं तब ऐसी अवस्थामें आहारकशरीरी, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीवोंके शरीर निगोद-रहित कैसे हो सकते हैं ? समाधान यह है कि प्रमत्तसंयत जीवके जो औदारिकशरीर होता है वह तो निगोदोंसे सप्रतिष्ठित ही होता है। वहां जो आहारकशरीर उत्पन्न होता है वह अवश्य ही निगोदराशिसे अप्रतिष्ठित होनेके कारण केवल प्रत्येकरूप होता है। इसी प्रकार जब यह जीव बारहवें गुणस्थानमें पहुँचता है तो वहां उसके शरीरमें जितनी निगोदराशि होती है उसका क्रमसे अभाव होता जाता है और बारहवें गुणस्थानके अंतिम समयमें निगोदराशि और क्रमराशिका पूरी तरहसे अभाव होकर सयोगिकेवली जीवका शरीर केवल प्रत्येकरूप हो जाता है। उसके बाद अयोगिकेवली जीवके यही शरीर रहता है, इससिए यह भी प्रत्येकरूप होता है। यह जघन्य प्रत्येकशरीर वर्गणा क्षपितकर्मांश विधिसे आये हुए अयोगिकेवली जिनके अंतिम समयमें होती है और उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा महावनके दाहादिके समय एकबंधन-बद्ध अग्निकायिक जीवोंके होती है। यहां यद्यपि महावनके दाहके समय जितने अग्निकायिक जीव होते हैं उनका अपना अपना शरीर अलग अलग ही होता है, पर वे सब जीव और उनके शरीर परस्पर संयुक्त रहते हैं, इसलिए उन सबकी एक वर्गणा मानी गई है। यहां एक प्रश्न यह होता है कि विग्रहगतिमें स्थित जो बादर निगोद और सूक्ष्मनिगोद जीव होते हैं उन्हें प्रत्येकशरीर मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि, वहां उन जीवोंका एक शरीर न होनेसे वे सब अलग अलग ही माने जाने चाहिए। इस शंकाका समाधान यह है कि वहां भी उनके साधारण नोकर्मका उदय रहता है और इसलिए वे अनंत होते हुए भी एकबंधनबद्ध ही होते हैं, अतः उन्हें प्रत्येकशरीर नहीं माना जा सकता। यह कहना कि विग्रहगतिमें शरी-रनामकर्मका उदय देखा जाता है, इसलिए जिनके इन कर्मोंका उदय होता है उन्हें निगोद जीव माननेमें कोई बाधा नहीं आती। तथा इनके अतिरिक्त जो जीव होते हैं, चाहे उन्होंने शरीर ग्रहण किया हो और चाहे शरीर ग्रहण न किया हो, वे सब प्रत्येकशरीर जीव कहलाते हैं। इस प्रकार प्रत्येकशरीरवर्गणा किन किन जीवोंके किस प्रकार होती है इसका विचार किया।

उक्त चार वर्गणाओंमें दूसरी वर्गणा बादरनिगोदवर्गणा है। यह वर्गणा क्षपित कर्मांशविधिसे आये हुए क्षीणकषाय जीवके अंतिम समयमें होती है, क्योंकि, एक तो जो क्षपितकर्मांश विधिसे आया हुआ जीव होता है उसके कर्म और नोकर्मका सञ्चय उत्तरोत्तर न्यून न्यून होता जाता है। दूसरे ऐसा नियम है कि क्षपकश्रेणि पर आरोहण कर-नेवाले जीवके विशुद्धिवश ऐसी योग्यता उत्पन्न हो जाती है जिससे उस जीवके क्षीणकषाय गुणस्थानमें पहुँचने पर उसके प्रथम समयमें शरीरस्थित अनंत बादरनिगोद जीव मरते हैं। इस प्रकार क्षीणकषायके प्रथम समयसे लेकर आवलिपृथक्त्वप्रमाण काल जाने तक उत्तरोत्तर विशेष अधिक विशेष अधिक बादरनिगोद जीव मरते हैं। उससे आगे क्षीणकषायके कालमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल शेष रहने तक संख्यातभाग अधिक संख्या-तभाग अधिक जीव मरते हैं। उससे अगले समयमें असंख्यातगुणे जीव

मरते हैं। इस प्रकार क्षीणकषायके अन्तिम समय तक असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे जीव मरते हैं। इस प्रकार क्षीणकषायके अन्तिम समयमें जो मरनेवाले निगोद जीव होते हैं उनके विस्रसोपचयसहित कर्म और नोकर्मके समुदायको एद बादर निगोदवर्गणा कहते हैं। चूंकि यह अन्य बादर निगोदवर्गणाकी अपेक्षा सबसे जघन्य होती है, अतः क्षपितकर्मांश विधिसे आये हुए जीवके क्षीणकषायके अन्तिम समयमें जघन्य बादर निगोदवर्गणा कही गई है।

यहाँ बारहवें गुणस्थानमें उस गुणस्थानवाले जीवके शरीरके सब निगोद जीवोंके मरनेकी बात कही गई है। इसका अभिप्राय यह है कि सयोगी केवली और अयोगिकेवली जीवका शरीर एक मात्र अपने जीवको छोडकर अन्य त्रस और स्थावर निगोद जीवोंसे रहित हो जाता है। उनके शरीरकी सात धातु और उपधातु यहाँ तक कि रोम, नख, चमडी और रक्त भी एक सयोगिकेवली जीवके शरीरको छोडकर अन्य किसी जीवका आधार नहीं रहता। यहाँ बारहवें गुणस्थानमें यद्यपि क्रमसे निगोद राशिका अभाव बतलाया गया है, इसलिए यह प्रश्न हो सकता है की क्षीणकषाय जीवके शरीरसे निगोदराशिका अभाव होता है तो होओ, पर उसके शरीरसे त्रसराशिका भी अभाव हो जाता है यह कैसे माना जा सकता है? उत्तर यह है कि नारकी देव, आहारकशरीरी और केवली इन चार प्रकारके त्रस जीवोंके शरीरोंको छोडकर अन्य जितने त्रस जीवोंके शरीर हैं वे सब बादरनिगोद प्रतिष्ठित होते हैं, ऐसा आगमवचन है। अब जब कि केवली जिनके शरीरमें एक भी निगोद जीव नहीं रहता तो वहाँ उनके आधारभूत अन्य कृमिरूप त्रस जीवोंकी सम्भावना ही नहीं की जा सकती है। यही कारण है कि केवली जिनके शरीरको कृमिरूप त्रस जीवों और बादरनिगोद जीवोंसे रहित बतलाया है

निगोद जीव क्षीणकषाय जीवके शरीरमेंसे क्यों मरने लगते हैं, इसका समाधान वीरसेन स्वामीने इस प्रकार किया है। उनका कहना है कि ध्यानके बलसे वहाँ उत्तरोत्तर बादर निगोद जीवोंकी उत्पत्तिका निरोध होता जाता है, इसलिए क्रमसे नये बादर निगोद जीव उत्पन्न नहीं होते हैं और जो पुराने बादरनिगोद जीव होते हैं उनकी आयु पूर्ण हो जानेके कारण वे मर जाते हैं। यद्यपि क्षीणकषायके शरीरमें बादर निगोद जीव सर्वथा उत्पन्न ही नहीं होते ऐसी बात नहीं है। प्रारम्भमें तो वे उत्पन्न होते हैं और क्षीणकषायगुणस्थानके कालमें बादरनिगोद जीवकी जघन्य आयु प्रमाण कालके शेष रहने तक वे उत्पन्न होते हैं। इसके बाद नहीं उत्पन्न होते। यहाँ यह प्रश्न होता है कि जिस प्रकार प्रारम्भमें वे उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार क्षीणकषायके अन्तिम समय तक वे क्यों नहीं उत्पन्न होते? समाधान यह है कि केवली जिनका शरीर प्रतिष्ठित प्रत्येकरूप है ऐसा षट्खण्डागम शास्त्रका अभिप्राय है। अब यदि यह माना जाता है कि क्षीणकषाय जीवके शरीरमें अन्तिम समय तक बादर निगोद जीव उत्पन्न होते हैं तो केवली जिनके शरीरमें भी बादर निगोद जीवोंका सद्भाव मानना पडता है। चूंकि केवली जिनके शरीरमें बादर निगोद जीवोंका सद्भाव नहीं बतलाया है, इसलिए यह बात सुतरां सिद्ध हो जाती है कि क्षीणकषायके शरीरमें अन्तिम समय तक बादर निगोद जीव न उत्पन्न होकर जहाँ तक सम्भव है वहीं तक उत्पन्न होते है।

साधारणतः अन्य शास्त्रोंमें केवली जिनके शरीरको सात धातु और उपधातुसे रहित परमौदारिक रूप कहा गया है और यह भी बतलाया है कि केवलीके शरीरके नख और केश

नहीं बढते। केवली होनेके समय शरीरकी जो अवस्था रहती है, आयुके अन्तिम समय तक वही अवस्था बनी रहती है, सो इन सब बातोंका रहस्य इस मान्यतामें छिपा हुआ है। इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि उनके शरीरमेंसे हड्डी आदिका अभाव हो जाता है। जो चीज जैसी होती है वह वैसी ही बनी रहती है। मात्र उसमेंसे बादर निगोद जीव और उनके आधारभूत कृमिका अभाव हो जानेसे वह उस प्रकार पुद्गलका सञ्चयमात्र रह जाता है। उदाहरणके लिए दूध लीजिए। गायके स्तनोंसे दूध निकालनेपर कुछ कालमें उसमें जीवोत्पत्ति होने लगती है, पर अग्नि पर अच्छी तरहसे तपा लेनेपर उसमें कुछ काल तक जीवोत्पत्ति नहीं होती। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह दूध ही नहीं रहता। दूध तो उस अवस्थामें भी बना रहता है। इस प्रकार जो बात दूधके विषयमें है वही बात केवली जिनके शरीरके और उसकी धातुओं और उपधातुओंके विषयमें भी जाननी चाहिए।

इस प्रकार क्षपितकर्मांश विधिसे आए हुए क्षीणकषाय जीवके अन्तिम समयमें प्राप्त शरीरमें जघन्य बादरनिगोदवर्गणा होती है। तथा स्वयम्भूरमणद्वीपके कर्मभूमिसम्बन्धी भागमें मूलीके शरीरमें उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा होती है। मध्यमें नाना जीवोंका आश्रय लेकर ये बादरनिगोदवर्गणायें अनेक विध होती हैं।

तीसरी विचारणीय सूक्ष्मनिगोदवर्गणा है। बादर और सूक्ष्मनिगोदवर्गणामें अन्तर यह है कि बादरनिगोदवर्गणा दूसरेके आश्रयसे रहती है और सूक्ष्मनिगोदवर्गणा जलमें, स्थलमें व आकाशमें सर्वत्र बिना आश्रयके रहती है। क्षपित कर्मांशविधिसे और क्षपित घोलमान विधिसे आये हुए जो सूक्ष्म निगोद जीव होते हैं उनके यह सूक्ष्म निगोद वर्गणा जघन्य होती है। यह तो आगमप्रसिद्ध बात है कि एक निगोद जीव अकेला नहीं रहता। अनन्तानन्त निगोद जीवोंका एक शरीर होता है। असंख्यातलोकप्रमाण शरीरोंकी एक पुलवि होती है और आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवियोंका एक स्कन्ध होता है। यहाँ ऐसे सूक्ष्म स्कन्धकी एक जघन्य वर्गणा ली गई है। तथा उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा एक बन्धनबद्ध छह जीवनिकायोंके संघातरूप महामत्स्यके शरीरमें दिखलाई देती है। ये अपने जघन्यसे उत्कृष्ट तक निरन्तर क्रमसे पाई जाती हैं। बादर निगोद वर्गणाओंमें जिस प्रकार बीच-बीचमें अन्तर दिखलाई देता है उस प्रकार इनमें नहीं दिखलाई देता।

चौथी विशेष वक्तव्य योग्य महास्कन्धद्रव्यवर्गणा है। यह वर्गणा आठों पृथिवियाँ, भवन और विमान आदि सब स्कन्धोंके संयोगसे बनती है। यद्यपि इन सब पृथिवी आदिमें अन्तर दिखलाई देता है, पर सूक्ष्म स्कन्धों द्वारा उनका परस्पर सम्बन्ध बना हुआ है, इसलिए इन सबको मिलाकर एक महास्कन्ध द्रव्यवर्गणा मानी गई है।

इसप्रकार ये कुल तेईस वर्गणायें हैं। इनमेंसे आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा मनोवर्गणा और कार्मणशरीरवर्गणा ये पाँच वर्गणायें जीवद्वारा ग्रहण योग्य हैं, शेष नहीं। इन वर्गणाओंका प्रमाण कितना है, पिछली वर्गणासे अगली वर्गणा किस क्रमसे चालू होती है, अपनी जघन्यसे अपनी उत्कृष्ट कितनी बडी है आदि प्रश्नोंका समाधान मूलको देखकर कर लेना चाहिए।

यहां तक एकश्रेणिवर्गणाओंका विचार करके आगे नानाश्रेणिवर्गणाओंका विचार करते हुए कौन वर्गणा कितनी होती है यह बतलाया गया है। एकश्रेणिवर्गणामें जातिकी

अपेक्षा कुल वर्गणायें तेईस मानकर उनका विचार किया गया है और नानाश्रेणिवर्गणामें प्रत्येक वर्गणा संख्याकी अपेक्षा कितनी हैं इसप्रकार परिमाण बतलाकर विचार किया गया है।

वर्गणानिरूपणा- तेईस प्रकारकी वर्गणाओंमेंसे कौन वर्गणा किस प्रकार उत्पन्न होती है, क्या भेदसे उत्पन्न होती है या संघातसे उत्पन्न होती है, या भेद-संघातसे उत्पन्न होती है इस बातका विचार इस अधिकारमें किया गया है। स्कन्धके टूटनेका नाम भेद है। परमाणुओंके समागमका नाम संघात है और स्कन्धका भेद होकर मिलनेका नाम भेद-संघात है। उदाहरणार्थ- द्विप्रदेशी आदि उपरिम वर्गणाओंके भेदसे एकप्रदेशी वर्गणा उत्पन्न होती है। द्विप्रदेशी वर्गणा त्रिप्रदेशी आदि उपरिम वर्गणाओंके भेदसे, एकप्रदेशी वर्गणाओंके संघातसे और स्वस्थानकी अपेक्षा भेद-संघातसे उत्पन्न होती है। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए। मात्र सान्तर-निरन्तर वर्गणासे लेकर अशून्यरूप जितनी वर्गणायें हैं वे सब स्वस्थानकी अपेक्षा भेद-संघातसे ही उत्पन्न होती हैं। इतनी बात अवश्य है कि किन्हीं सूत्रपोथियोंमें सान्तर-निरन्तर वर्गणाकी उत्पत्ति भी पूर्वकी वर्गणाओंके संघातसे, उपरिम वर्गणाओंके भेदसे और स्वस्थानकी अपेक्षा भेद-संघातसे बतलाई है। कारणका विचार मूल टीकामें किया ही है, इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए।

पहले वर्गणाद्रव्यसमुदाहारके चौदह भेद करके सूत्रकारने वर्गणाप्ररूपणा और वर्गणानिरूपणा इन दो का ही विचार किया है। शेष बारहका क्यों नही किया है इस बातका विचार करते हुए वीरसेन स्वामी कहते हैं कि सूत्रकार चौबीस अनुयोगद्वारस्वरूप महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके ज्ञाता थे, इसलिए उन अनुयोगद्वारोंके अजानकार होनेके कारण नहीं किया है, यह तो कहा नहीं जा सकता है। वे उनका कथन करना भूल गये इसलिए नहीं किया है यह भी कहना उचित नहीं है, क्योंकि, सावधान व्यक्तिसे ऐसी भूल होना सम्भव नहीं है। फिर क्यों नहीं किया है इस बातका समाधान करते हुए वीरसेनस्वामी कहते हैं कि पूर्वाचार्योंके व्याख्यानका जो क्रम रहा है उसका प्ररूपण करनेके लिए ही यहाँ भूतबलि भट्टारकने शेष बारह अनुयोगद्वारोंका कथन नहीं किया है। इस प्रकार मूल सूत्रोंमें शेष बारह अनुयोगद्वारोंका विचार तो नहीं किया गया है, फिर भी वीरसेनस्वामीने उन अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर वर्गणाओंका विस्तारसे विचार किया है, सो समस्त विषय मूलसे जान लेना चाहिए।

बाह्य वर्गणा विचार

इस प्रकार यहाँ तक आभ्यन्तर वर्गणाका विचार करके आगे बाह्यवर्गणाका विचार चार अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर किया गया है। वे चार अनुयोगद्वार ये हैं- शरीरिशरीरप्ररूपणा, शरीरप्ररूपणा, शरीरविस्रसोपचयप्ररूपणा और विस्रसोपचयप्ररूपणा। शरीरी जीवको कहते हैं। इनके प्रत्येक और साधारणके भेदसे दो प्रकारके शरीर होते हैं। इन दोनोंका जिसमें प्रतिपादन किया जाता है उसे शरीरिशरीरप्ररूपणा कहते हैं। औदारिक आदि पाँच प्रकारके शरीरोंका अपनी अवान्तर विशेषताओंके साथ जिसमें प्ररूपणा किया जाता है उसे शरीरप्ररूपणा कहते हैं। जिसमें पाँचों शरीरोंके विस्रसोपचयके सम्बन्धके कारणभूत स्निग्ध रूक्षगुणके अविभागप्रतिच्छेदोंका कथन किया जाता है उसे शरीरविस्रसोपचयप्ररूपणा कहते हैं। तथा जिसमें जीवसे मुक्त हुए उन्हीं परमाणुओंके विस्रसोपचयकी प्ररूपणा की जाती है उसे विस्रसोपचयप्ररूपणा कहते हैं।

शरीरिशरीरप्ररूपणा– इसमें जीवोंके प्रत्येकशरीर और साधारण शरीर ये दो भेद बतलाकर साधारणशरीर वनस्पतिकायिक ही होते हैं और शेष जीव प्रत्येकशरीर होते हैं यह बतलाया गया है। इसके आगे साधारणका लक्षण करते हुए बतलाया है कि जिनका साधारण आहार है और श्वासोच्छ्वासका ग्रहण साधारण है वे साधारण जीव हैं। इनका शरीर एक होता है। उसे व्याप्त कर अनन्तानन्त निगोद जीव रहते हैं, इसलिए इन्हें साधारण कहते हैं और इसीलिए आहार और श्वासोच्छ्वासका ग्रहण भी साधारण होता है। तात्पर्य यह है कि सर्व प्रथम उत्पन्न हुए जीव जितने कालमें शरीर आदि चार पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होते हैं उतने ही कालमें अनन्तर उसी शरीरमें उत्पन्न हुए जीव भी शरीर आदि चार पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो जाते हैं। यहां अलग अलग जीवोंके योगके तारतम्यसे और आगे पीछे उत्पन्न होनेसे पर्याप्तियोंके पूर्ण करनेमें कोई अन्तर नहीं पडता। यहां तक पर्याप्तियोंके पूर्ण होनेके समयमें यदि जीव इस शरीरमें उत्पन्न होते हैं तो वे उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही पूर्वमें उत्पन्न हुए जीवों द्वारा ग्रहण किये गये आहारसे उत्पन्न हुई शक्तिको प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें उसके लिए अलगसे प्रयत्नशील नहीं होना पडता। विशेष स्पष्ट कहें तो यह कहा जा सकता है कि पर्याप्तियोंकी निष्पत्तिके लिए एक जीव द्वारा जो अनुग्रहण अर्थात् परमाणु-पुद्गलोंका ग्रहण है वह उस समय वहाँ रहनेवाले या पीछे उत्पन्न होनेवाले अन्य अनन्तानन्त जीवोंका अनुग्रहण होता है, क्योंकि, एक तो उस आहारसे जो शक्ति उत्पन्न होती है वह युगपत् सब जीवोंको मिल जाती है। दूसरे उन परमाणुओंसे जो शरीरके अवयव बनते हैं वे सबके होते हैं। इसी प्रकार बहुत जीवोंके द्वारा जो अनुग्रहण है वह एक जीवके लिए भी होता है। एक शरीरमें जो प्रथम समयमें जीव उत्पन्न होते हैं और जो द्वितीयादि समयोंमें उत्पन्न होते हैं वे सब यहाँपर एक साथ उत्पन्न हुए माने जाते हैं, क्योंकि, उन सबका एक शरीरके साथ सम्बन्ध पाया जाता है। यह तो उनके आहारग्रहणकी विधि है। उनके मरण और जन्मके सम्बन्धमें भी यह नियम है कि जिस शरीरमें एक जीव उत्पन्न होता है वहाँ नियमसे अनन्तानन्त जीव उत्पन्न होते हैं और जिस शरीरमें एक जीव मरता है वहाँ नियमसे अनन्तानन्त जीवोंका मरण होता है। तात्पर्य यह है कि वे एक बन्धनबद्ध होकर ही जन्मते हैं और मरते हैं। वे निगोद जीव बादर और सूक्ष्मके भेदसे दो प्रकारके होते है और ये परस्पर अपने सब अवयवों द्वारा समवेत होकर ही रहते हैं। उसमें भी बादर निगोद जीव मूली, थूवर और आर्द्रक आदिके आश्रयसे रहते हैं और सूक्ष्म निगोद जीव सर्वत्र एक बन्धनबद्ध होकर पाये जाते हैं। एक निगोद जीव अकेला कहीं नहीं रहता। इन निगोद जीवोंके जो आश्रय स्थान हैं उनमें असंख्यात लोकप्रमाण निगोदशरीर होते हैं। उनमेंसे एक एक निगोदशरीरमें जितने बादर और सूक्ष्मनिगोद जीव प्रथम समयमें उत्पन्न होते है उनसे दूसरे समयमें उसी शरीरमें असंख्यातगुणे हीन निगोद जीव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक उत्तरोत्तर प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणे हीन असंख्यातगुणे हीन जीव उत्पन्न होते हैं। पुनः एक, दो आदि समयसे लेकर उत्कृष्ट रूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका अंतर देकर पुनः एक, दो आदि समयोंसे लेकर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सान्तर निरन्तरक्रमसे जबतक सम्भव है वे निगोद जीव उत्पन्न होते हैं। ये सब उत्पन्न हुए जीव एक साथ एक क्षेत्रावगाही होकर रहते हैं। सूत्रकार कहते हैं कि ऐसे अनन्त जीव हैं जो अभीतक त्रसपर्याप्तको नहीं प्राप्त हुए हैं, क्योंकि, इनका एकेन्द्रिय जातिमें उत्पत्तिका

कारणभूत संक्लेश परिणाम प्रबल है जिससे वे निगोदवास छोडनेमें असमर्थ हैं। अबतक जितने सिद्ध हुए और जितना काल व्यतीत हुआ उससे भी अनन्तगुणे जीव एक निगोद-राशिमें निवास करते हैं। यहाँपर वीरसेनाचार्य संख्यात आदिकी परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि आय रहित जिन राशियोंका केवल व्ययके द्वारा विनाश सम्भव है वे राशियाँ संख्यात और असंख्यात कही जाती हैं। तथा आय न होनेपर भी जिस राशिका व्ययके द्वारा कभी अभाव नहीं होता वह राशि अनन्त कही जाती हैं। यद्यपि अर्धपुद्गल परिवर्तन काल भी अनन्त माना जाता है, पर यह उपचार कथन है। और इस उपचारका कारण यह है कि यह अन्य ज्ञानोंका विषय न होकर अनन्त संज्ञावाले सिर्फ केवलज्ञानका विषय है, इसलिए इसमें अनन्तका व्यवहार किया जाता है। निगोदराशि दो प्रकारकी है- चतुर्गतिनिगोद और नित्यनिगोद। जो चारों गतियोंमें उत्पन्न होकर पुनः निगोदमें चले जाते हैं वे चतुर्गतिनिगोद कहलाते हैं। इतरनिगोद शब्द इसीका वाचक है और जो अबतक निगोदसे नहीं निकले हैं या सर्वदा निगोदमें रहते हैं वे नित्यनिगोद कहे जाते हैं। अतीत कालमें कितने जीव त्रस-पर्यायको प्राप्त कर चुके हैं इस प्रश्नका समाधान करते हुए वीरसेनस्वामी लिखते हैं कि अतीतकालसे असंख्यातगुणे जीव ही अभीतक त्रसपर्यायको प्राप्त हुए हैं।

यह अर्थपद है। इसके अनुसार यहाँ आठ अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। वे ये हैं- सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। यहाँ इन आठों अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर दो शरीरवाले, तीन शरीरवाले, चार शरीरवाले और शरीर सहित जीवोंका ओघ और आदेशसे विचार किया गया है। विग्रहगतिमें विद्यमान चारों गतिके जीव दो शरीरवाले होते हैं, क्योंकि, उनके तैजस और कार्मण ये दो शरीर पाये जाते हैं। औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरवाले या वैक्रियिक, तैजस और कार्मणशरीरवाले जीव तीन शरीरवाले होते हैं। औदारिक, वैक्रियिक, तैजस और कार्मणशरीरवाले या औदारिक, आहारक, तैजस और कार्मणशरीरवाले जीव चार शरीरवाले होते हैं। तथा सिद्ध जीव शरीर रहित होते हैं। यहाँ सत् आदि अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे विशेष व्याख्यान मूलसे जान लेना चाहिए। विशेष बात इतनी है कि सूत्रोंमें केवल सत्प्ररूपणा और अल्पबहुत्व प्ररूपणा ही कही गई है। शेष छहका व्याख्यान वीरसेन आचार्यने किया है।

शरीरप्ररूपणा- इसका व्याख्यान छह अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे किया गया है। वे छह अनुयोगद्वार ये हैं- नामनिरुक्ति, प्रदेशप्रमाणानुगम, निषेकप्ररूपणा, गुणकार, पदमीमांसा और अल्पबहुत्व। नामनिरुक्तिमें पाँचों शरीरोंकी निरुक्ति की गई है। प्रदेशप्रमाणानुगममें पाँचों शरीरोंके प्रदेश अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवे भागप्रमाण है यह बतलाया गया है। निषेकप्ररूपणाका विचार अवान्तर छह अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर किया गया है। उनके ये नाम हैं- समुत्कीर्तना प्रदेशप्रमाणानुगम, अनन्तरोपनिधा, परम्परोपनिधा, प्रदेशविरच और अल्पबहुत्व। समुत्कीर्तना द्वारा बतलाया गया है कि जिन औदारिक, वैक्रियिक और आहारकशरीरकी वर्गणाओंका प्रथम समयमें ग्रहण होता है उनमेंसे कुछ एक समय तक, कुछ दो समय तक इस प्रकार तीन आदि समयसे लेकर जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति होती है कुछ उतने काल तक रहती हैं। आशय यह है कि इन शरीरोंकी स्थितिमें आबाधा काल नहीं होता। इसी प्रकार तैसजशरीरके

विषयमें भी जानना चाहिए। मात्र तैजसशरीरकी उत्कृष्ट स्थिति छयासठ सागर लेनी चाहिए। कार्मणशरीरके परमाणु ग्रहण करनेके बाद एक आवलि तक नहीं खिरते, इसलिए इसके परमाणु कुछ एक समय अधिक एक आवलि तक और कुछ दो समय अधिक एक आवलि तक इस प्रकार तीन समय अधिक एक आवलिसे लेकर उत्कृष्ट रूपसे कर्मस्थिति-प्रमाण काल तक रहते हैं। कार्मणशरीरकी स्थितिमें कमसे कम एक आवलिप्रमाण आबाधा काल है, इसलिए यहाँ आबाधाको ध्यानमें रखकर निर्जराका विचार किया गया है। प्रदेश-प्रमाणानुगममें बतलाया है कि पाँचों शरीरोंके प्रदेश प्रत्येक समयमें अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण प्राप्त होते हैं। और यह क्रम अपनी अपनी स्थिति तक जानना चाहिए। अनन्तरोपनिधामें बतलाया है कि पाँचों शरीरोंके प्रदेश प्राप्त होकर प्रथम समयमें बहुत दिये जाते हैं। तथा द्वितीयादि समयोंमें विशेष हीन विशेष हीन दिए जाते हैं। इस प्रकार अपनी अपनी स्थिति पर्यन्त जानना चाहिए। परम्परोपनिधामें बतलाया है कि प्रारम्भके तीन शरीरोंके प्रदेश प्रथम समयमें जितने दिये जाते हैं, अन्तर्मुहूर्त जाने पर उसके अन्तिम समयमें वे आधे दिये जाते हैं। इसलिए इन शरीरोंकी एक द्विगुणहानि अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और नाना द्विगुणहानियाँ आदिके दो शरीरोंमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण और आहारकशरीरमें संख्यात समयप्रमाण होती हैं। तथा तैजसशरीर और कार्मणशरीरके प्रदेश प्रथम समयमें जितने निक्षिप्त होते हैं, पल्यके असंख्यातवें भाग जाकर वे आधे निक्षिप्त होते हैं। इनकी एक द्विगुणहानि पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है और नाना द्विगुणहा-नियाँ पल्यके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। प्रदेशविरचमें सोलह पदवाला दण्डक कहा गया है जिसमें पर्याप्तिनिर्वृत्ति, निर्वृत्तिस्थान और जीवनीयस्थान इनका स्वतन्त्र भावसे और सम्मूर्च्छन, गर्भज व औपपादिक जीवोंके आश्रयसे स्वस्थान अल्पबहुत्व कहा गया है। उसके बाद इन्हींका परस्थान अल्पबहुत्व कहा गया है। पुनः इसके आगे प्रदेशविरचके छह अवान्तर अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश करके उनके आश्रयसे पाँच शरीरोंकी प्ररूपणा की गई है। उनके नाम ये हैं- जघन्य अग्रस्थिति, अग्रस्थितिविशेष, अग्रस्थितिस्थान, उत्कृष्ट अग्रस्थिति, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्व। निषेकप्ररूपणाके अंतिम अनुयोगद्वार अल्पबहुत्वमें पाँच शरीरोंके आश्रयसे एक गुणहानि और नाना गुणहानियोंके अल्पबहुत्वका विचार किया गया है। इस प्रकार अपने अवान्तर अधिकारोंके साथ निषेक प्ररूपणाका कथन करके गुणकार अनुयोग-द्वारमें पाँच शरीरोंके प्रदेश उत्तरोत्तर कितने गुणे हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिए गुणकारका कथन किया है। पदमीमांसामें औदारिक आदि पाँच शरीरोंके जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशोंका स्वामी कौन-कौन जीव है इसका विचार किया गया है। अल्पबहुत्वमें औदारिक आदि पाँच शरीरोंके प्रदेशोंके अल्पबहुत्वका विचार कर शरीरप्ररूपणा समाप्त की गई है।

शरीरविस्रसोपचयप्ररूपणा- यद्यपि पांच शरीरोंमें स्निग्धादि गुणोंके कारण जो परमाणुपुद्गल सम्बद्ध होकर रहते हैं उनकी विस्रसोपचय संज्ञा है। फिर भी यहाँ पर इन विस्रसोपचयोंके कारणभूत जो स्निग्धादि गुण हैं उन्हें भी कारणमें कार्यका उपचार करके विस्रसोपचय कहा गया है। इस प्रकार यहां इन्हीं स्निग्धादि गुणोंका इस अनुयोगद्वारमें अपने छह अवान्तर अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर विचार किया गया है। उनके नाम ये हैं-अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्धकप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, शरीरप्ररूपणा

और अल्पबहुत्व । अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणामें बतलाया है कि औदारिक शरीरके एक एक प्रदेशमें सब जीवोंसे अनन्तगुणे अनन्त अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । वर्गणाप्ररूपणामें बतलाया है कि इस प्रकार अविभागप्रतिच्छेदवाले सब जीवोंसे अनन्तगुणे परमाणुओंकी एक वर्गणा होती है और ये सब वर्गणायें अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण होती हैं । इतनी वर्गणाओंका एक औदारिकशरीरस्थान होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । स्पर्धक प्ररूपणामें बतलाया है कि अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण वर्गणाओंका एक स्पर्धक होता है । तथा सब स्पर्धक मिलकर भी इतने ही होते हैं । अन्तर प्ररूपणामें बतलाया है कि एक स्पर्धकसे दूसरे स्पर्धककी अन्तिम वर्गणामें जितने अविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं उन्हें सब जीवोंसे अनन्तगुणे करने पर जो लब्ध आवे उतने अविभाग-प्रतिच्छेद उससे अगले स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें जानने चाहिए । शरीरप्ररूपणामें बतलाया है कि ये अनन्त अविभागप्रतिच्छेद शरीरके बन्धनके कारणभूत गुणोंका प्रज्ञासे छेद करने पर उत्पन्न होते हैं और फिर यहीं पर प्रसंगसे छेदके दस भेदोंका स्वरूपनिर्देश किया गया है । अल्पबहुत्वमें पांच शरीरोंके अविभागप्रतिच्छेदोंके अल्पबहुत्वका विचार करके शरीर-विस्रसोपचयप्ररूपणा समाप्त की गई है ।

विस्रसोपचयप्ररूपणा– जो पाँच शरीरोंके पुद्गल जीवने छोड दिये हैं और जो औदारिकभावको न छोडकर सब लोकमें व्याप्त होकर अवस्थित हैं उनकी यहां विस्रसोपचय संज्ञा मानकर विस्रसोपचयप्ररूपणा की गई है । एक एक जीवप्रदेश अर्थात् एक एक परमाणु पर सब जीवोंसे अनन्तगुणे विस्रसोपचय उपचित रहते हैं और वे सब लोकमें से आकर विस्रसोपचयरूपसे सम्बन्धको प्राप्त होते हैं । या वे पाँच शरीरोंके पुद्गल जीवसे अलग होकर सब आकाश प्रदेशोंसे सम्बन्धको प्राप्त होकर रहते हैं । इस प्रकार जीवसे अलग होकर सब लोकको प्राप्त हुए उन पुद्गलोंकी द्रव्यहानि, क्षेत्रहानि, कालहानि और भावहानि किस प्रकार होती है, आगे यह बतलाया गया है और यह बतलानेके बाद जीवसे अभेदरूप पाँच शरीर पुद्गलोंके विस्रसोपचयका माहात्म्य बतलानेके लिए अल्पबहुत्वका निर्देश किया गया है । तथा मध्यमें प्रसंगसे जीवप्रमाणानुगम प्रदेशप्रमाणानुगम और इनके अल्पबहुत्वका भी विचार किया गया है । इस प्रकार इतना विचार करने पर बाह्यवर्गणाका विचार समाप्त होता है ।

चूलिका

पहले जो अर्थ कह आये हैं उनका विशेषरूपसे कथन करना चूलिका है । पहले ' जत्थेय मरदि जीवो ' इत्यादि गाथा कह आये हैं । यहां पर सर्व प्रथम इसी गाथाके उत्तरार्ध विचार किया गया है । ऐसा करते हुए बतलाया है कि प्रथम समयमें एक निगोद जीवके उत्पन्न होने पर उसके साथ अनन्त निगोद जीव उत्पन्न होते हैं । तथा जिस समय ये जीव उत्पन्न होते हैं उसी समय उनका शरीर और पुलवि भी उत्पन्न होती है । तथा कहीं कहीं पुलविकी उत्पत्ति पहले भी हो जाती है, क्योंकि, पुलवि अनेक शरीरोंका आधार है, इसलिए उसकी उत्पत्ति पहले माननेमें कोई बाधा नहीं आती । साधारण नियम यह है कि अनन्तानन्त निगोद जीवोंका एक शरीर होता है और असंख्यात लोकप्रमाण शरीरोंकी एक पुलवि होती है । प्रथम समयमें जितने निगोद जीव

उत्पन्न होते हैं दूसरे समयमें वहीं पर असंख्यातगुणे हीन जीव उत्पन्न होते हैं। तीसरे समयमें उनसे भी असंख्यातगुणे हीन जीव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे हीन जीव उत्पन्न होते हैं। उसके बाद कमसे कम एक समयका और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका अन्तर पड जाता है। पुनः अन्तरके बादके समयमें असंख्यातगुणे हीन जीव उत्पन्न होते हैं और यह क्रम आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक चालू रहता है। इस प्रकार इन निगोद जीवोंकी उत्पत्ति और अन्तरका क्रम कहकर अद्धाअल्पबहुत्व और जीव अल्पबहुत्वका विचार किया गया है। अद्धाअल्पबहुत्वमें सान्तरसमयमें और निरन्तरसमयमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका अल्पबहुत्व तथा इन कालोंका अल्पबहुत्व विस्तारके साथ बतलाया गया है। जीव अल्पबहुत्वमें कालका आश्रय लेकर जीवोंका अल्पबहुत्व बतलाया गया है। इसके बाद स्कन्ध, अण्डर, आवास और पुलवियोंमें जो बादर और सूक्ष्म निगोद जीव उत्पन्न होते हैं वे सब पर्याप्त ही होते हैं या अपर्याप्त ही होते हैं या मिश्ररूप ही होते हैं इस प्रश्नका समाधान करते हुए प्रतिपादन किया है कि सब बादर निगोद जीव पर्याप्त ही होते हैं, क्योंकि, अपर्याप्तकोंकी आयु कम होनेसे वे पहले मर जाते हैं, इसलिए पर्याप्त जीव ही होते हैं। किन्तु इसके बाद वे मिश्ररूप होते हैं, क्योंकि बादमें पर्याप्त और अपर्याप्त बादर निगोद जीवोंके एक साथ रहनेमें कोई बाधा नहीं आती। किन्तु सूक्ष्म निगोद वर्गणामें सभी सूक्ष्म निगोद जीव मिश्ररूप ही होते हैं, क्योंकि, इनकी उत्पत्तिके प्रदेश और कालका कोई नियम नहीं है।

इस प्रकार 'जत्थेय मरदि जीवो' इत्यादि गाथाके उत्तरार्धका कथन करके उसके पूर्वार्धका विचार करते हुए बतलाया गया है कि जो बादर निगोद जीव उत्पत्तिके क्रमसे उत्पन्न होते हैं और परस्पर बन्धनके क्रमसे सम्बन्धको प्राप्त होते हैं उनका मरणका क्रमसे ही निर्गम होता है। इनका उत्पत्तिके क्रमसे निर्गमन नहीं होता है, किन्तु मरणके क्रमसे निर्गमन होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। मरणका क्रम क्या है इस प्रश्नका समाधान करते हुए बतलाया है कि वह दो प्रकारका है– यवमध्यक्रम और अयवमध्यक्रम। इनमेंसे पहले अयवमध्यक्रमका निर्देश करते हैं– सर्वोत्कृष्ट गुणश्रेणिके द्वारा मरनेवाले और सबसे दीर्घकाल द्वारा निर्लेप्यमान होनेवाले जीवोंके अन्तिम समयमें मृत होनेसे बचे हुए निगोदोंका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। यहाँ निगोद शब्द पुलविवाची है। अभिप्राय यह है कि क्षीणकषायके अन्तिम समयमें पूर्वमें मृत हुए जीवोंसे बचे हुए जीवोंकी पुलवियाँ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है। क्षीणकषायके अन्तिम समयमें निगोद जीवोंके शरीर असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं और एक एक शरीरमें पूर्वमें मरनेसे बचे हुए अनन्त निगोद जीव होते हैं। तथा उनकी आधारभूत पुलवियाँ उक्त प्रमाण होती हैं। यहाँ क्षीणकषायके कालके भीतर वा थूवर आदिमें मरनेवाले जीवोंकी प्ररूपणा चार प्रकारकी है– प्ररूपणा, प्रमाण, श्रेणि और अल्पबहुत्व। प्ररूपणामें बतलया है कि क्षीणकषायके प्रत्येक जीव मरते है। प्रमाणमें बतलाया है कि क्षीणकषायके प्रत्येक समयमें अनंत जीव मरते हैं। श्रेणि दो प्रकारकी है– अनंतरोपनिधा और परंपरोपनिधा। अनंतरोपनिधामें बतलाया है कि क्षीणकषायके प्रथम समयमें मरनेवाले जीव स्तोक हैं। दूसरे समयमें मरनेवाले जीव विशेष अधिक हैं। इस प्रकार आवलिपृथक्त्व कालतक प्रत्येक

समयमें विशेष अधिक विशेष अधिक जीव मरते हैं। उसके आगे विशेष अधिक मरणके अन्तिम समयतक प्रत्येक समयमें संख्यात भाग अधिक जीव मरते हैं। उसके बाद क्षीणकषायके संख्यातवें भागप्रमाण कालमेंसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल शेष रहनेपर इसके भीतर असंख्यातगुणित क्रमसे गुणश्रेणि मरण होता है। परम्परोपनिधामें बतलाया है कि क्षीणकषायके प्रथम समयमें जितने जीव मरते हैं उससे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल जानेपर मरनेवाले जीव दूने हो जाते हैं, इस प्रकार इतना इतना अवस्थित अध्वान जाकर मरनेवाले जीवोंकी संख्या दूनी दूनी होती जाती है और यह क्रम असंख्यातवें भाग अधिक मरनेवाले जीवोंके अन्तिम समयके प्राप्त होनेतक जानना चाहिए। उसके बाद अन्तिम समयतक प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणे जीव मरते हैं।

आगे क्षीणकषायके कालमें बादर निगोद जीवके जघन्य आयुप्रमाण कालके शेष रहनेपर बादर निगोद जीव नहीं उत्पन्न होते हैं। इस अर्थको स्पष्ट करनेके लिए आयुओंका अल्पबहुत्व बतलाया गया है। आगे जघन्य और उत्कृष्ट बादर और सूक्ष्म निगोद जीवोंकी पुलवियोंका परिमाण बतलाकर सब निगोदोंकी उत्पत्तिमें कारण महास्कन्धके अवयव आठ पृथिवी, टङ्क, कूट, भवन, विमान, विमानेन्द्रक आदि बतलाये गये हैं। साथ ही यह भी बतलाया गया है कि जब महास्कन्धके स्थानोंका जघन्य पद होता है तब बादर त्रसपर्याप्तकोंका उत्कृष्ट पद होता है और जब बादर त्रसपर्याप्तकोंका जघन्य पद होता हैं तब मूल महास्कन्धस्थानोंका उत्कृष्ट पद होता है।

आगे मरणयवमध्य और शमिलायवमध्य आदिका कथन करनेके लिए संदृष्टियां स्थापित करके सब जीवोंमें महादण्डकका कथन किया गया है और संदृष्टियोंमें जो बात दरसाई गई है उसका यहां सूत्रोंद्वारा प्रतिपादन किया गया है। यहा विशेष जानकारीके लिए मूलका स्वाध्याय अपेक्षित है। इस प्रकार इतने कथन द्वारा 'जत्थेय मरइ जीवो' इस गाथाकी प्ररूपणा समाप्त होती हैं।

अब पांच शरीरोंके ग्रहण योग्य कौन वर्गणायें है और कौन ग्रहण योग्य नहीं हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिए ये चार अनुयोगद्वार आये हैं- वर्गणाप्ररूपणा, वर्गणानिरूपणा, प्रदेशार्थता और अल्पबहुत्व। वर्गणाप्ररूपणामें पुनः एक प्रदेशी परमाणु पुद्गल द्रव्य वर्गणासे लेकर कार्मणद्रव्यवर्गणा तककी सब वर्गणाओंका नामोल्लेख किया गया है। वर्गणानिरूपणामें इन वर्गणाओंमेंसे एक-एक वर्गणाको लेकर यह वर्गणा ग्रहणप्रायोग्य नहीं है ऐसी पृच्छा करके जो जो वर्गणा ग्रहणप्रायोग्य नहीं है उसे अग्रहणप्रायोग्य बतलाकर अन्तमें यही पृच्छा अनन्तानन्त परमाणु पुद्गल द्रव्य वर्गणाके विषयमें करके यह बतलाया गया है कि इसमेंसे कुछ वर्गणायें ग्रहणप्रायोग्य हैं और कुछ वर्गणायें ग्रहणप्रायोग्य नहीं हैं। इसका विशेष खुलासा करते हुए वीरसेन स्वामी लिखते हैं कि इस सूत्रमें जघन्य आहारवर्गणासे लेकर महास्कन्धद्रव्य वर्गणा तक सब वर्गणाओंकी अनन्तानन्तप्रदेशी परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा संज्ञा है। इनमेंसे आहारवर्गणा तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा. मनोवर्गणा और कार्मणशरीरवर्गणा ये पांच वर्गणायें ग्रहणप्रायोग्य हैं, शेष नहीं। जो पांच वर्गणायें ग्रहणप्रायोग्य हैं उनमें आहारवर्गणामेंसे औदारिकशरीर वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीर इन तीन शरीरोंका ग्रहण होता है। तैजस वर्गणामेंसे तैजसशरीरका ग्रहण होता है। भाषावर्गणामेंसे चार प्रकारकी भाषाओंका ग्रहण होता है।

मनोवर्गणामेंसे चार प्रकारके मनकी रचना होती हैं और कार्मणवर्गणामेंसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मोंका ग्रहण होता है। इन सूत्रोंकी टीका करते हुए वीरसेन स्वामीने एक बहुत ही महत्वकी बातकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है। उनका कहना है कि यद्यपि आहार वर्गणासे औदारिक आदि तीन शरीरोंका निर्माण होता है पर जिन आहारवर्गणाओंसे औदारिकशरीरका निर्माण होता है उनसे वैक्रियिक और आहारक शरीरका निर्माण नहीं होता। जिन आहार-वर्गणाओंसे वैक्रियिकशरीरका निर्माण होता हैं उनसे औदारिक और आहारकशरीरका निर्माण नहीं होता। तथा जिन आहारवर्गणाओंसे आहारकशरीरका निर्माण होता है उनसे औदारिक और वैक्रियिकशरीरका निर्माण नहीं होता। वस्तुतः औदारिक आदि तीन शरीरोंका निर्माण करनेवाली आहारवर्गणायें अलग अलग है उनके मध्यमें व्यवधान न होनेसे उनकी एक वर्गणा मानी गई है। इसी प्रकार भाषा आदि वर्गणाओंमें चार भाषाओं, चार मन और आठ कर्मोंकी वर्गणायें भी अलग अलग जाननी चाहिए। इस प्रकरणके जो सूत्र हैं उन्हीके आधारसे उन्होंने यह अर्थ फलित किया है। प्रदेशार्थतामें सब शरीरोंकी प्रदेशार्थता अनन्तानन्त प्रदेशवाली है यह बतलाकर आदिके तीन शरीरोंमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श बतलायें हैं। तथा अन्तके दो शरीरोंमें पांच वर्ण पाँच रस, दो गन्ध और चार स्पर्श बतलाये हैं। आहा-रकशरीरमें धवल वर्ण होता है ऐसी अवस्थामें यहां पांच वर्ण कंसे बतलाये हैं इसका समाधान करते हुए वीरसेन स्वामी लिखते हैं कि आहारकशरीरके विस्रसोपचयकी अपेक्षा उसका धवल वर्ण कहा जाता है, वंसे उसमें पाँचो वर्ण होते हैं। इसी प्रकार इस शरीरमें अशुभ रस, अशुभ गन्ध और अशुभ स्पर्श अव्यक्त भावसे रहते हैं, या अशुभ रस, अशुभ गन्ध, और अशुभ स्पर्श-वाली वर्गणायें आहारकशरीररूपसे परिणमन करते समय शुभ रूप हो जाती हैं, इसलिए इसमें पांच वर्णोंके समान पांच रस, दो गन्ध और आठस्पर्श भी बतलाये है। तथा तैजस और कार्मण स्कन्धमें प्रतिपक्षरूप स्पर्श नहीं होते, इसलिए चार स्पर्श बतलाये है। अल्पबहुत्व दो प्रकारका है- प्रदेश अल्पबहुत्व और अवगाहना अल्पबहुत्व। प्रदेशअल्पबहुत्वमें बतलाया है कि औदारि-कशरीर द्रव्यवर्गणाके प्रदेश सबसे स्तोक है। उनसे वैक्रियिकशरीर द्रव्यवर्गणाके प्रदेश असं-ख्यातगुणे हैं। उनसे आहारकशरीर द्रव्यवर्गणाके प्रदेश असंख्यातगुणे है। उनसे आहारकशरीर द्रव्यवर्गणाके प्रदेश असंख्यातगुणे हैं। उनसे तैजसशरीर द्रव्यवर्गणाके प्रदेश अनन्तगुणे हैं। उनसे भाषा, मन और कार्मणशरीर द्रव्यवर्गणाके प्रदेश उत्तरोत्तर अनन्तगुणे हैं अवगाहना अल्पबहुत्वमें बतलाया है कि कार्मणशरीर द्रव्यवर्गणाकी अवगाहना सबसे स्तोक है। उससे मनोद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना असंख्यातगुणी है। उससे भाषाद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना असंख्या-तगुणी है। उससे आहारकशरीर द्रव्यवर्गणाकी अवगाहना असंख्यातगुणी है। उससे वैक्रियिक-शरीर द्रव्यवर्गणाकी अवगाहना असंख्यातगुणी है और उससे औदारिक शरीर द्रव्यवर्गणाकी अवगाहना असंख्यातगुणी है।

बन्धविधान

बन्धके चार भेद हैं-प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। इन चारोंका विस्तारसे निरूपण भगवान् भूतबलि भट्टारकने महास्कन्धमें किया है। उसका यहां पर प्ररूपण करनेपर बन्धविधान समाप्त होता है।